International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialsciencejournal.in
Volume 3; Issue 4; April 2017; Page No. 62-64

स्वानुभूति बनाम सहानुभूति का प्रश्न

जी0 गणेशन मिश्रा
(शोधछात्र) हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तावना

वर्तमान समय में स्त्री विमर्श के केन्द्र में स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न एक गंभीर सैद्धान्तिक मुद्दा है। प्रोक्ति के स्तर पर स्त्रीवादी लेखन के संदर्भ में पुरुष लेखक और महिला लेखिकाओं के बीच उपरोक्त प्रश्न को लेकर द्वन्द्व की स्थिति रही है। इन्हीं के बीच स्त्रीवादी लेखिकाओं के द्वारा पूर्व की हिन्दी साहित्य की आलोचना की पद्धति को चुनौती देते हुए एक वैकल्पिक मूल्यांकन पद्धति को स्थापित करने की कोशिश की जा रही है, जिसमें पूछा जा रहा है कि क्या पुरुषों के नारीवादी लेखन में सहानुभूति का स्तर उतना प्रामाणिक हो सकता है, जितना कि एक स्त्री का भोगा हुआ सच। पुरुष लेखकों का प्रश्न है कि क्या स्त्रियों की समस्याओं को स्त्रियाँ ही समझ सकती है ? क्या स्त्री लेखन वह नहीं हो सकता, जो पुरुषों द्वारा लिखा जाता है। डॉ0 नितिन मेहता के शब्दों में– ''शायद यह सही होगा कि नारी की सवंदेना को नारी ही पहचान सकती है, पर यह सच नहीं है कि पुरुष उसे पहचान नहीं सकता, कलावृत्ति के संदर्भ में यह विकल्प खुला रहना होगा, आखिर एक मनुष्य दूसरे मनुष्य को किस प्रकार देखता है, चित्रित करता है, उसी प्रकार मानवीय संवेदना चेतना के कितने, कौन से आयाम अभिव्यक्त कर सकती है, इसी का साहित्य में मूल्य है।''[1]

स्त्री लेखिकाओं कहना है कि स्त्री की समस्याओं को एक स्त्री ही अच्छी तरह से समझ सकती है क्योंकि अनुभूति की महत्ता सर्वोपरि है। उनका केन्द्रीय नुक्ता– 'जिये हुए अनुभव', 'जलने की पीड़ा राख ही जानती है', मीरा के शब्दों में– 'घायत की गति घायल जाने' तथा 'उ का जाने पीर पराई जाके पैर न फटी बिवाई' है। इस संदर्भ में छायावादी कवयित्री महादेवी वर्मा लिखती हैं– ''पुरुष के लिए नारीत्व अनुमान है, अतः अपने जीवन का जैसा सजीव चित्र वह हमें दे सकेंगी, वैसा पुरुष बहुत साधना के उपरान्त भी शायद ही दे सके।''[2] स्त्री सहानुभूति की अपेक्षा अना हक माँगती है। महादेवी ने अपनी लेखनी से स्त्री को अपने अधिकारों के प्रति सजग रहने की चेतना दी। अपने अधिकारों और शक्ति को पहचानने की प्रेरणा नारी समाज को उन्होंने ही प्रदान की। शिक्षा कानून, विज्ञान, समाज सेवा, चिकित्सा, कारीगरी, साहित्य जो भी क्षेत्र हो, इनमें कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं जहाँ स्त्री कार्य न कर सकती हों। स्त्रियों द्वारा लिखा साहित्य जग–जीवन के नवीन पक्षों और रंगों का उद्घाटन करता है तथा नारी सहज रहस्यमयी मनोभावना की अभिव्यंजना में तो वह पुरुष के साहित्य की अपेक्षा कुछ अधिक सहज, स्पष्ट और मर्मस्पर्शी बन पड़ा है। डॉ0 कंचनलता यादव लिखती है कि– ''यह निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है कि तीव्र अनुभूतियों की व्यंजना और रमणीय कल्पना विधान काव्य का मूलाधार है। अनुभूति की ऐसी तीव्रता और सहजता मात्र नारी कवयित्रियों में ही पायी जाती है। जीव मात्र के प्रति उनकी उदार एवं व्यापक दृष्टि का परिचय मात्र इतने से ही चल जाता है कि उनकी गहरी सहानुभूति एवं सहज आत्मीयता के पात्र केवल मनुष्य ही नहीं पशु पक्षी भी हैं।''[3]

स्त्रीवादी लेखिकाओं का मानना है कि एक पुरुष स्त्री की पीड़ा एवं दर्द को परिभाषित करे यह सहानुभूति उन्हें स्वीकार नहीं। उनके दर्द और पीड़ा को कोई पुरुष व्यक्त नहीं कर सकता वह तो केवल उसे अनुभूत करने वाले स्त्री ही कर सकती है। प्रभा खेतान कहती है– ''स्त्री लेखन की सीमा उसके स्त्री होने में निहित कारणों में है. ..... लेकिन किए सामाजिक परिवेश में ऐसा घटा ? किन–किन जोखिमों में हिन्दी समाज की स्त्री को गुजरना पड़ता है ? स्त्री पुरुष की परिस्थितियाँ समान नहीं तो रचनात्मक परिणाम भी समान कैसे होंगे।''[4]

स्वानुभूति और सहानुभूति के मुद्दे को लेकर न सिर्फ पुरुष लेखक बल्कि स्त्री लेखिकाएँ भी दो वर्गों में बँटी है। जहाँ एक वर्ग जो स्त्री लेखन में विभाजन की बात नकारता है इनका तर्क है कि रचनाकाल का न कोई धर्म होता है, न जाति, न वर्ग, न सम्प्रदाय, वह कवेल अनुभूति को प्रामाणिक मानता है और उसकी अभिव्यक्ति के लिए ही प्रयास करता है। स्वानुभूति और सहानुभूति के मुद्दे पर मृदुला गर्ग लिखती है– ''जो दृष्टि नारी के सांस्कृतिक, ऐतिहासिक छवि के तिलिस्म को तोड़े, वह नारी चेतना .....नारी चेतना सम्पन्न कथा साहित्य स्त्री–पुरुष दोनों रच सकते हैं।''[5] वहीं दूसरा वर्ग जो अलग स्त्री लेखन की मांग करता है। ये तर्क देती हैं कि– ''स्त्री लेखन और पुरुष लेखन में फर्क होता है और रहेगा.. ..... क्योंकि स्त्री–पुरुष आज भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जैविक आर्थिक धरातल पर भिन्न रहे।''[6]

स्त्री लेखन में स्वानुभूति की पक्षधर लेखिकाओं का तर्क है कि स्त्री पुरुष एक–दूसरे से पृथक हैं। यह पृथकता उन्हें ऐतिहासिक परिस्थितियों से नहीं प्राप्त हुई, बल्कि प्रकृति प्रदत्त है। स्त्री की अनुभूतियाँ पुरुषों के अनुभूतियों से भिन्न होती हैं, स्त्री की स्वतंत्र दृष्टि होती है, स्वतंत्र संस्कृति होती है, साथ ही स्वतंत्र इतिहासबोध एवं इतिहास दृष्टि भी होती है। उन्हें किसी भी सहानुभूति की आवश्यकता नहीं है, वह उधार के अनुभव पर भरोसा नहीं करती, उनका मानना है कि हमारा अपना अनुभव ही अन्तिम सत्य होगा, पुरुषों की सहानुभूति का दायरा हमारी आत्मानुभूति के दायरे के परे नहीं है इसलिए स्त्री लेखन स्वयं में स्वतंत्र है। इस संदर्भ में एक सभा को सम्बोधित करते हुए सराह ने कहा– ''मैं अपनी जाति से कुछ भी अनुग्रह की चाह नहीं रखती पर भाइयों से इतना जरूर चाहती हूँ कि वे मुझे सीधे खड़े रहने की इजाजत दे।''[7]

जहाँ तक स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न है वह नारियों के वाजिब सवालों की लड़ाई का है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि सवाल नारियों द्वारा उठाए जा रहे हैं या पुरुषों द्वारा। वास्तव में हमने नारी–पुरुष दो शक्तियों को हमेशा आपस में विभाजित कर के देखने के आदी रहे हैं। इसी को बच्चन जी ने अपनी कविता में भी कहते नजर आते हैं– ''उस नयन में बह सकी कब, इस नयन की अश्रुधारा।'' जब हम पीड़ा प्रवाह की बात करते हैं तो यह साफ दिखायी देता है कि नारी पीड़ा को पुरुष वर्ग महसूस नहीं कर सकता। वस्तुतः हमारे आगे नारियों के उत्थान की बात होनी चाहिए, न कि वह मुद्दा नारियों द्वारा उठायी जा रही या पुरुषों द्वारा।

इस संदर्भ में चित्रा मुद्गल की दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट है। उनका मानना है कि– ''लेखन, लेखन होता है, नर–मादा नहीं। उसे नर–मादा के खाँचों में बाँधकर देखने वाली दृष्टि पूर्वाग्रह ग्रस्त है।''[8] अरविन्द जैन का कहना है कि– ''जब लेखक कलम उठाकर अपने लिखने का धर्म निभाता है, तब वह केवल लेखक होता है, स्त्री–पुरुष के शरीर से परे धर्म, समाज और परिवार से ऊपर उठ जाता है।''[9]

स्वानुभूति और सहानुभूति के माध्यम से स्त्री लेखन को एक सीमा के भीतर बाँध देना उचित नहीं है। स्वानुभूति और सहानुभूति का यह मुद्दा सिर्फ लिंग एवं देह को व्याख्यायित करता है। भूमण्डलीकरण के इस दौर में विकास के हर क्षेत्र में स्त्री–पुरुष समान है। यहाँ जो जैसी अनुभूति करेगा। वैसा व्यक्त करेगा फिर स्वानुभूति और सहानुभूति का प्रश्न नहीं उठता। नामवर सिंह का कहना है कि– ''यह सही है कि स्त्री का स्त्री के लिए लेखन साहित्य को नई भाषा, नया पाठ और नई दृष्टि देता है जिनका स्वागत और रेखांकन अनिवार्य है। परन्तु इसे स्त्री तक सीमित करने से जहाँ पुरुष स्त्री विषय से बाहर का व्यक्ति हो जाता है स्त्री की 'स्त्री विषय' तक सीमित हो जाता है। और कई बार स्त्री लेखन को दोयम दर्जे का लेखन समझे जाने के खतरे उठाने पड़ते हैं।''[10]

स्त्री लेखिकाओं के लेखन में नारियों की जिस स्थिति का चित्रण हुआ है, उसमें लेखकीय सर्जना, कल्पना और भाषा–भावगत वातावरण कहीं न कहीं लेखन का अपना संसार होता है, जिसमें वह समाज और मानवीय प्रवृत्तियों और परम्पराओं से भी बहुत कुछ ग्रहण करता है। यह जरूरी भी नहीं है कि जो जितना अपने विषय में लिखे वह सब भोगा हुआ उसका यथार्थ ही हो, यदि ऐसा अगर हो जाए तो स्त्री लेखन केवल व केवल एक आत्मकथा बनकर रह जायेगी, उससे आगे वह कुछ और हो नहीं सकती। इस संदर्भ में राजेन्द्र यादव कहते हैं कि– ''स्त्री का, स्त्री के लिए, स्त्री के द्वारा लेखन, स्त्री विमर्श पर इस दृष्टि से विचार करने पर स्त्री–विमर्श व्यक्तिगत अनुभव के संसार तक सिमटकर सिर्फ आत्मकथाओं तक सीमित होने का खतरा सौंपता है।''[11]

इस बात को हम दूसरे ढंग से भी कह सकते हैं कि एक स्त्री जो अपने जीवन में बलात्कार जैसी कुत्सित और अमानवीय घटना से रूबरू होती है यदि उसके दर्द एवं पीड़ा को कोई दूसरी स्त्री यथावत महसूस करके व्यक्त कर सकती है, तो पुरुष भी कर सकता है इसमें उन्हें एतराज करने की बात नहीं आनी चाहिए। इस तरह स्त्री लेखन में स्त्रियों द्वारा स्वानुभूति का नारा जो बुलन्द किया जाता रहा है वह उलझता हुआ प्रतीत हो रहा है। प्रो0 श्रीनारायण पाण्डेय के अनुसार– ''केवल स्त्री ही स्त्री के दुःख–दर्द को कह सकती है, यह फार्मूलेशन ठीक नहीं है। ऐसा करने से अपना और विश्व साहित्य का एक बहुत बड़ा हिस्सा हम खो देंगे। टॉलस्टॉय, जोला, शरदचन्द्र, निराला बहुत से लेखक हैं जो छूट जाएंगे।''[12]

किसी भी रचना में जितना महत्व कथ्य का होता है उतना भाषा एवं शिल्प का भी होता है। शिल्प में भाषा अहम मानी जाती है। भाषा साहित्य की वह प्राणवती शक्ति है जिसके द्वारा रचनाकार अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति देता है। भाषायी मतभेद भी स्वानुभूति एवं सहानुभूति के स्तर पर लागू होता है। जिस तेवर में स्त्री अपने अनुभव को उद्घाटित करती है, पुरुष उसमें करने में असमर्थ पाया जाता है। हर अनुभूतिगत सच्चाई की एक भाषा भी होती है जिसको वही समझ सकता है इसलिए ''लेखिका के पास अपने अनुभवों को व्यक्त करने के लिए सार्थक व संयत भाषा है जिसमें सादगी और रावानगी है। लक्षणा और व्यंजना के सायास चमत्कारी प्रयोगों की अपेक्षा सीधी भाषा में अनुभवों की जटिलता को व्यक्त करने और वर्णन करने का दक्षतापूर्ण सामर्थ्य है।''[13] पुरुष की अपनी सामंती भाषा है। रंभागौरी गाँधी जी0ए0 का मानना है कि– ''स्त्री का दुःख तो स्त्री ही समझ सकती है। अतः उसकी शिक्षा की अत्यन्त आवश्यकता है। पुरुष हमारी मदद करेंगे और हमारी पूर्ण स्वाधीनता में सहानुभूति दिखलाएंगे, ऐसी आशा रखने से शायद निराश भी होना पड़े। अगर वे हमारा हित चाहने वाले होते तो अभी तक कुछ क्यों न करते ? उन्होंने हमें क्यों कुचल डाला और अपना स्वार्थ सिद्ध किया ? यद्यपि ऐसे पुरुष भी हैं, जो स्त्रियों की स्वाधीनता के सिद्धान्त को मानते हैं और उनकी सहायता भी करते हैं, परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है।''[14]

निष्कर्षतः दोनों वर्गों के विचारों और साहित्य की मूल संवेदना को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि साहित्य रचना और आलोचना को जाति, धर्म, लिंग, वर्ग, वर्ण में विभाजित करके नहीं देखा जाना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से साहित्य का 'सहित' का भाव ही विखंडित हो जायेगा फिर हम इस तरह से विभाजन में विभाजन करते ही रहेंगे। सभी का अपना जीवनानुभव होता है, उसका भोगा हुआ यथार्थ होता है और सबके अपने–अपने सत्य हैं। उसमें एक अदृश्य तंतु जो लेखन को पूर्णता प्रदान करता है, वह एक ही है– 'मानवता की उच्चतम प्रतिष्ठा।' इसके अलावा कुछ भी नहीं होता है। सभी के केन्द्र में कहीं न कहीं मानवीयता, मनुष्यता ही निहित है। इसलिए स्त्री विमर्श में स्वानुभूति और सहानुभूति के विवाद में न पड़कर उसके मूल प्रयोजन व उद्देश्य स्त्री मुक्ति एवं स्त्री सशक्तीकरण पर बल देना चाहिए। जिससे स्त्री–चेतना और साहित्य संसार का फलक विस्तृत व्यापक और समृद्ध हो सके। मेरा आग्रह है कि स्त्री–साहित्य को भी साहित्य की मुख्यधारा में ही रखकर पढ़ना चाहिए ताकि हिन्दी साहित्य हमारी और समृद्ध हो सके ऐसा होने पर ही हम वैश्विक पटल पर हो प्रतिस्पर्धा में आगे निकल सकते हैं। इन्हीं अवधारणों के भीतर मैंने अपने शोध–प्रबन्ध में इक्कीसवीं सदी के स्त्री व पुरुष दोनों के कथा साहित्य को सम्मिलित किये है। ताकि स्त्री दृष्टि के विकास का मूल्यांकन सम्पूर्णता में किया जा सके। शोध–प्रबन्ध की यही अपनी मर्यादा व सीमा भी है जिसमें वह उस समय की रचनाओं की तटस्थता पूर्वक मूल्यांकन करे और अपने निष्कर्षों को भी उल्लिखित करे।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. आधुनिक कथा साहित्य में नारी, संपा0 डॉ0 उमा शुक्ला, पृ0 177
2. शृंखला की कड़ियाँ, महादेवी वर्मा, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2004, पृ0 66
3. नई सहस्राब्दी का स्त्री विमर्श : साहित्यिक अवधारणा एवं यथार्थ, संपा0 डॉ0 वीरेन्द्र सिंह यादव, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण–2010, पृ0 40
4. उपनिवेद में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ0 44–46
5. स्त्री अस्मिता और विचारधारा, संपा0 जगदीश चतुर्वेदी, सुधा सिंह, पृ0 206
6. उपनिवेद में स्त्री, प्रभा खेतान, पृ0 18
7. स्त्री विमर्श विविध संदर्भ, डॉ0 आराधना मिश्रा, राका प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण–2012, पृ0 70
8. इण्डिया टुडे, साहित्य वार्षिकी 1996 का लेख, पृ0 21
9. अनुसंधान, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, अंक–8, पृ0 268
10. वही, पृ0 67
11. हंस, 2004, पृ0 6
12. अनुसंधान, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, अंक–8, पृ0 67

13. महिला कथाकारों के उपन्यासों में समय, समाज और संवेदना, संपा0 वीरेन्द्र सिंह यादव, पैसिफिक पब्लिकेशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण–2012, पृ0 227
14. स्त्री विमर्श का कालजयी इतिहास, संपा0 डॉ0 संजय गर्ग, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली, संस्करण–2014, पृ0 88